Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
January to March 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIII (53), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

भारतीय ज्ञान परंपरा एवं संस्कृत साहित्य में विश्व कल्याण की भावना

डॉ. नलिनी तिलकर*

* सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (संस्कृत) PMCoE शासकीय माधव महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – भारतीय ज्ञान परंपरा में संस्कृत साहित्य को केवल दार्शनिक चिन्तन या तर्क –वितर्क का साधन नहीं माना गया, बल्कि इसे विश्वशांति, सह अस्तित्व और सार्वभौमिक कल्याणकारी जीवन–दृष्टि का संवाहक स्वीकार किया गया है। प्राचीन ऋषियों ने अपने आत्मानुभव और तपोबल के आधार पर ऐसा ज्ञान संस्कार निर्मित किया, जो व्यक्तिगत मोक्ष तक सीमित न रहकर समस्त मानवता और जगत् की मंगलकामना करता है। इसी कारण भारतीय साहित्य में 'व्यक्ति' और 'विश्व' के बीच किसी प्रकार का द्वंद्व नहीं, बल्कि परस्पर पूरक और समन्वित संबंध दृष्टिगोचर होता है।

ऋग्वेद में मानव समाज को सामूहिक कल्याण की दिशा में प्रेरित करते हुए कहा गया है –

'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।।' [1]

तुम सब मिलकर चलो, एक साथ विचार करो और ज्ञान का आदान प्रदान करो। जैसे प्राचीन देवगण यज्ञ में एकत्र होते थे, वैसे ही तुम भी समन्वय और सामूहिक भावना से कार्य करो।

उपनिषदों में यह दृष्टिकोण और भी गहन रूप में प्रकट होता है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है–

'आत्मवैदं सर्वं ब्रह्म ।' [2]

यह समस्त जगत् आत्मा ही है, और वही ब्रह्म है। जब सभी प्राणी उसी ब्रह्मस्वरूप आत्मा के अंश हैं, तब किसी एक का हित सम्पूर्ण जगत् के हित से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में इस सार्वभौमिक करुणा और कल्याण की चेतना का उदात्त आह्वान किया गया है–

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ।।'[3]

सभी प्राणी सुखी हों, सब रोगमुक्त हों, सबको शुभ दिखाई दे और कोई भी दु:ख का भागी न बने। यह वाक्यांश भारतीय दार्शनिक परंपरा की सार्वभौमिक करुणा और कल्याण की चेतना का सर्वोच्च उदाहरण है।

यही दृष्टि महोपनिषद् में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के वैश्विक मंत्र के रूप में अभिव्यक्त होती है ।

'अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।' [4]

यह मेरा है और यह पराया है , ऐसी संकीर्ण गणना छोटे हृदय वाले लोग करते हैं उदार चरित्र वाले महापुरुषों के लिए सम्पूर्ण वसुंधरा ही एक परिवार है।

महाकाव्यों में भी यही विश्वकल्याणकारी चेतना प्रतिपादित है।

महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है–

'यत्र धर्मस्तत्र सत्यं यत्र सत्यं तत्र जयः।
यत्र जयस्तत्र लोकोऽयं यत्र लोकोऽयं तत्र सुखम्।।' [5]

जहाँ धर्म है वहाँ सत्य है, जहाँ सत्य है वहाँ विजय है, जहाँ विजय है वहाँ लोक की रक्षा है और जहाँ लोक की रक्षा है वहाँ सुख है।

इन सबके अतिरिक्त मनुस्मृति में भी इसी भाव को प्रतिपादित किया गया है –

'सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय।' [6]

संपूर्ण प्राणियों के हित और सुख की कामना ही जीवन का मूल उद्देश्य है।

इन श्लोकों और विचारों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा, वेदों से लेकर उपनिषदों, महाकाव्यों और धर्मशास्त्रों तक, केवल आत्मोत्कर्ष या वैयक्तिक मोक्ष तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसकी आत्मा सार्वभौमिक शांति, विश्वबंधुत्व और समग्र कल्याण की चेतना रही है। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा के उस वैश्विक संदेश का आधार है जो आज भी मानवता के लिए उतना ही प्रासंगिक है जितना प्राचीन काल में था।

भारतीय संस्कृति की आत्मा उसकी ज्ञान परंपरा है, जो केवल तर्क और बौद्धिक विमर्श तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने मानव जीवन, सामाजिक संगठन और ब्रह्मांडीय संतुलन को आधार प्रदान किया। 'विद्' धातु से व्युत्पन्न 'वेद' ज्ञान के उस शाश्वत स्वरूप का परिचायक है, जो अनुभवजन्य और सार्वभौमिक सत्य पर आधारित है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का आरंभ वेदों से हुआ, जिनमें ऋग्वेद ने देवताओं के स्तुति–सूक्तों के माध्यम से सृष्टि के रहस्यों का उद्घाटन किया, यजुर्वेद ने कर्मकांड और यज्ञ की व्यवस्था दी, सामवेद ने संगीत के माध्यम से आध्यात्मिक साधना का पथ बताया तथा अथर्ववेद ने चिकित्सा, विज्ञान और लोकजीवन से संबंधित विषयों का प्रतिपादन किया ।

उपनिषदों में ज्ञान को ब्रह्म और आत्मा की एकता के रूप में परिभाषित किया गया है – 'अहं ब्रह्मास्मि' बृहदारण्यक उपनिषद् तथा 'तत्त्वमसि' छान्दोग्य उपनिषद । यह प्रतिपादन स्पष्ट करता है कि आत्मा और परमात्मा का अद्वैत अनुभव ही वास्तविक ज्ञान है।

महाभारत और भगवद्गीता भारतीय ज्ञान परंपरा को जीवन दर्शन और नैतिक मूल्यों की ठोस नींव प्रदान करते हैं। गीता में कृष्ण कहते हैं

'विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।'[7]

जिससे स्पष्ट होता है कि सच्चा ज्ञान सभी प्राणियों में समान भाव देखने की दृष्टि देता है।

भारतीय दर्शन में ज्ञान को केवल तर्कात्मक विषय न मानकर अनुभव और साधना के आधार पर देखा गया। न्याय दर्शन ने प्रमाणों (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द)के माध्यम से सत्य की खोज की। सांख्य दर्शन ने प्रकृति और पुरुष के द्वैत से अस्तित्व का विवेचन किया। योग दर्शन ने आत्मानुशासन और चित्तवृत्ति निरोध की साधना द्वारा मुक्ति का मार्ग दिखाया।

वेदांत दर्शन ने अद्वैतवाद के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि समस्त जगत एक ही ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार भारतीय मीमांसा और दर्शन ने ज्ञान को सार्वभौमिक कल्याण की दिशा में प्रयोज्य बनाया।

भारतीय परंपरा में धर्म केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित न होकर नैतिक सामाजिक अनुशासन के रूप में प्रतिपादित हुआ। महाभारत में कहा गया है 'धर्मो रक्षति रक्षित:', अर्थात धर्म की रक्षा करने वाला स्वयं भी सुरक्षित रहता है।

नि:स्वार्थ कर्मयोग का सिद्धांत गीता में प्रतिपादित है 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'। यह विचार आज के संदर्भ में सतत विकास और वैश्विक उत्तारदायित्व की भावना के लिए अत्यंत प्रासंगिक है।

उपनिषदों में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उद्घोष मिलता है, जो सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मानने की दृष्टि देता है। यह विचार आज के वैश्वीकरण और अंतरराष्ट्रीय सहयोग की नींव के रूप में देखा जा सकता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा के सिद्धांत– जैसे अहिंसा, पर्यावरण संतुलन – 'माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:', करुणा और सह अस्तित्व – आधुनिक युग की चुनौतियों जैसे जलवायु संकट, युद्ध और सामाजिक असमानताओं के समाधान प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय संस्कृति का मूलाधार उसकी ज्ञान परंपरा रही है, जो केवल बौद्धिक उपक्रम तक सीमित न होकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को आलोकित करती है। इस परंपरा का केंद्रीय भाव विश्वकल्याण है। भारतीय चिंतन में ज्ञान को व्यक्तिगत साधन या मात्र भौतिक प्रगति का उपकरण न मानकर, सार्वभौमिक सत्य एवं समष्टिगत उत्थान का साधन माना गया है।

भारतीय दर्शन की विभिन्न धाराओं ने भी विश्वकल्याण को लक्ष्य माना। सांख्य ने प्रकृति और पुरुष के संतुलन की बात कही, योग ने आत्मानुशासन और मानसिक शांति द्वारा सामाजिक सामंजस्य को बल दिया, और वेदांत ने अद्वैत दृष्टिकोण द्वारा संपूर्ण विश्व को एक ही ब्रह्म की अभिव्यक्ति माना।

ऋग्वेद में सर्वजन हित और सहयोगात्मक जीवनदृष्टि को इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है–

'स्वस्ति पन्थामनु चारेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददाताघ्नता जानत: संगमे नृणाम्।।'[8]

हम उसी कल्याणकारी पथ का अनुसरण करें जो सूर्य और चन्द्रमा के समान शाश्वत है। हम परस्पर अहिंसा और ज्ञान के साथ समाज में समन्वय स्थापित करते हुए आगे बढ़ें। भारतीय ज्ञान परंपरा का वैश्विक संदेश उपनिषदों में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

महाकाव्यों में भी यह विश्व–कल्याणकारी चेतना व्यापक रूप से प्रतिपादित हुई है। महाभारत में यह संक्षेप में व्यक्त किया गया है–

'लोका: समस्ता सुखिनो भवन्तु।'[9]

संपूर्ण लोक सुखी हों। यह सूक्ति भारतीय संस्कृति की उस जीवन–दृष्टि को अभिव्यक्त करती है जिसमें ज्ञान और धर्म दोनों का अंतिम लक्ष्य समस्त विश्व के कल्याण में निहित है।

भारतीय ज्ञानपरंपरा का मूल आधार विश्वकल्याण की भावना है। वैदिक ऋषियों ने ज्ञान को केवल बौद्धिक तर्क या आत्ममुक्ति का साधन न मानकर, उसे समस्त मानवता और सृष्टि के हित के लिए अनिवार्य माना। ऋग्वेद में सामूहिक सहयोग एवं एकता को कल्याण का पथ कहा गया, छान्दोग्य उपनिषद् में संपूर्ण जगत् को ब्रह्मस्वरूप मानकर सर्वात्मभाव का उद्घोष किया गया, जबकि महोपनिषद् में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के माध्यम से वैश्विक बंधुत्व को जीवन का मूल सिद्धांत प्रतिपादित किया गया।

बृहदारण्यक उपनिषद् और महाभारत के शान्तिपर्व में धर्म,सत्य,विजय को लोकसुख से जोड़े जाने की धारणा यह सिद्ध करती है कि भारतीय ज्ञानपरंपरा का अंतिम निष्कर्ष यही है कि व्यक्तिगत उन्नति का सर्वोच्च स्वरूप विश्वकल्याण से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में जनकल्याण को सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है। 'सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय' का सिद्धांत इस परंपरा की मूल चेतना को व्यक्त करता है। वैदिक साहित्य सामूहिक समन्वय, सहयोग और सह अस्तित्व का आह्वान करता हैय उपनिषद् सार्वभौमिक आत्मभाव और समस्त प्राणियों की एकात्मता का दर्शन कराते हैंय महाकाव्य लोकधर्म, सत्य और विजय को सामाजिक सुख से जोड़ते हैं और महोपनिषद् समस्त पृथ्वी को एक परिवार के रूप में देखने का संदेश देते हैं।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा का जनकल्याण संबंधी संदेश यह है कि समाज तभी उन्नत होगा जब सहयोग और सामूहिकता पर आधारित जीवनदृष्टि अपनाई जाएगी। व्यक्तिगत हित और सार्वभौमिक कल्याण एक दूसरे से अविभाज्य हैं। धर्म और ज्ञान का अंतिम प्रयोजन लोकमंगल और शांति की स्थापना है।

अत: यह परंपरा जनकल्याण की ऐसी दार्शनिक भूमि प्रस्तुत करती है, जो आज के वैश्वीकरण और मानवाधिकार विमर्श में भी अत्यंत प्रासंगिक है। भारतीय ज्ञान परंपरा, वेदों से लेकर उपनिषदों और महाकाव्यों तक, विश्वबंधुत्व, शांति और सार्वभौमिक कल्याण की जीवनदृष्टि को पोषित करती रही है। अत: संस्कृत साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा के उस वैश्विक संदेश का आधार है जो मानवता के लिए आज भी प्रासंगिक है। भारतीय ज्ञान परंपरा का चरम उद्देश्य व्यक्तिगत मुक्ति नहीं, बल्कि समष्टिगत कल्याण है। यह परंपरा मानव को आत्मबोध कराकर उसे समष्टि के हित में कार्य करने की प्रेरणा देती है। अत: यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी विश्वकल्याणकारी चेतना का आधार है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. ऋग्वेद संहिता, 10.191.2–4
2. छान्दोग्य उपनिषद् 3.14.1
3. बृहदारण्यक उपनिषद् 1.4.14
4. महोपनिषद् 6.71
5. महाभारत, शान्तिपर्व
6. मनुस्मृति 4.138
7. श्रीमद्भगवद्गीता 5.18
8. ऋग्वेद (5.51.15)
9. बृहदारण्यक उपनिषद् 1.4.14